यह घटना उस समय की है जब मैं छठवीं कक्षा में पढ़ता था। एक दिन हमारी शिक्षिका ने सभी बच्चों को पंक्ति बनाकर बाहर चलने के लिए कहा। अपन तो खुश! जाड़े के मौसम में धूप में बैठने का माहौल बन रहा होगा, या फिर कहीं घुमाने ले जाने वाली होंगी। मगर बाहर तो नज़ारा कुछ और ही था - इमली के पेड़ के नीचे टेबल-कुर्सी लगी थी। डॉक्टर साहब और उनके बूढ़े कम्पाउंडर साहब एक के बाद एक बच्चों को सुई लगा रहे थे। बच्चे चिल्ल-पों मचा रहे थे।

सारी खुशियां धरी-की-धरी रह गईं। पतली गली से खिसकने का कोई ज़रिया न था। दीदी पर रोष प्रगट करने से कोई फायदा तो नहीं था पर हमें यह अहसास था कि हमें चकमा देकर फंसाया गया है। दीदी ने ताड़ लिया हमारी फूंक सरक रही है। उन्होंने अपना पुराना नुस्खा आज़माया, "चलो बच्चों, चुप हो जाओ। चुपचाप अपने नंबर का इंतज़ार करोगे

कब सक्रिय होता है हमारे शरीर का प्रतिरक्षा तंत्र

टीका रक्षति रक्षितः

अमित मिश्रा

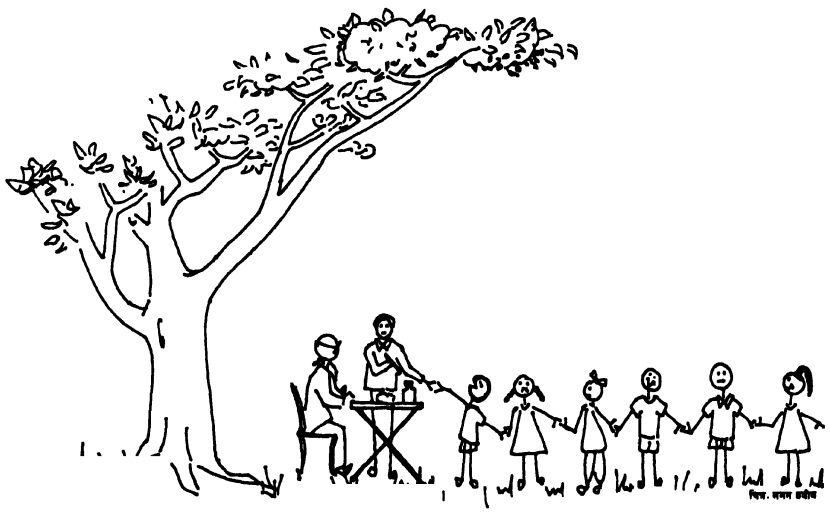

मैं तुम्हें कहानी सुनाऊंगी।" कहानियां तो दीदी सचमुच बहुत अच्छी सुनाती थीं। तनावपूर्ण वातावरण कुछ सुधरने लगा। मूल कथा तो मुझे याद नहीं है पर पुनर्निर्माण का प्रयास प्रस्तुत है।

मुर्गी - हैजा

तकरीबन सौ साल पहले फ्रांस में लुई पास्चर नामक एक वैज्ञानिक थे। थे तो हरफन मौला पर सूक्ष्मजीवों में विशेष रुचि रखते थे। उनके समय में यह जानकारी आम हो चुकी थी कि शराब (ताड़ी या महुआ किस्म की), दही, सिरका, कांजी इत्यादी सूक्ष्मजीवों के कारण बनते हैं। दूध को फटने से बचाने की विधि को उन्हीं के नाम पर 'पास्चुरीकरण' अथवा Pasteurisation कहते हैं। पास्चर को एक नए सिद्धांत ने भी काफी प्रभावित किया था जिसके अनुसार मनुष्यों और पशुओं को कई रोग ऐसे ही सूक्ष्मजीवी कीटाणुओं द्वारा संक्रमण के कारण होते हैं; न कि गर्म के बाद ठंडा खाने से या देवी-देवता के श्राप आदि से।

वे इस दिशा में मुर्गियों को होने वाले हैजा पर कुछ प्रयोग कर रहे थे। उन्होंने इस हैजे को पैदा करने वाले कीटाणुओं को पहचान लिया था, और उन्हें कांच की तश्तरियों में पाल रहे थे। अकेला कीटाणु तो दिखाई ही नहीं देता, पर सही भोजन, ताप और हवा मिलते रहने पर कीटाणुओं के झुण्ड इस प्रकार से तश्तरी पर पाले जा सकते हैं। बहरहाल, उनका यह विचार था कि यदि वे कीटाणु मुर्गी के शरीर में किसी प्रकार घुसा दिए जाएं, तो मुर्गी को हैजा हो जाएगा। यह काम उन्होंने अपने एक सहकर्मी को दिया, जिनका नाम था शाम्बरलां।

शाम्बरलां बेचारे काम में जुट गए। काफी मक्खी-मारू काम था। कीटाणुओं की 'खेती' करना, उनकी 'फसल' तैयार हो जाने पर उसे तश्तरी से निकालना, कुछ को 'बीज' के रूप में इस्तेमाल करना और ज़्यादातर कीटाणुओं को खाने या पानी में मिला कर मुर्गियों को देना। पर जल्दी ही नतीजे सामने आने लगे। पानी में मिले कीटाणु मुर्गी में हैजा उत्पन्न करने में सक्षम थे। हैजा बहुत तेज़ी से वार करता और दो दिन के अन्दर मुर्गी मर जाती। कुछ समय बाद शाम्बरलां पास्चर के पास गए और बोले, "पास्चर साहब, सर्दियों के बाद हमारे गांव के पास की नदी मछलियों से भर जाती है।"

"अच्छा! तो तुमने मुर्गियों के बाद मछलियों पर प्रयोग करने का निश्चय किया है", पास्चर बोले।

"अरे नहीं, बात यह है कि आप तो जानते ही हैं कि मुझे मछली पकड़ने का कितना शौक है। घंटों बैठ सकता हूं नदी के किनारे पानी में बंसी डाल कर...। कितना आनंदमयी अनुभव होता है..." शाम्बरलां ने सफाई देते हुए कहा।

"समझ गया, भाई, समझ गया, तुम छुट्टी बिताने गांव जाना चाहते हो न? ठीक है, जाओ मगर प्रयोगशाला का सारा इंतज़ाम करके जाना।"

शाम्बरलां इतने उतावले थे कि उन्होंने पास्चर की इस हिदायत पर विशेष ध्यान

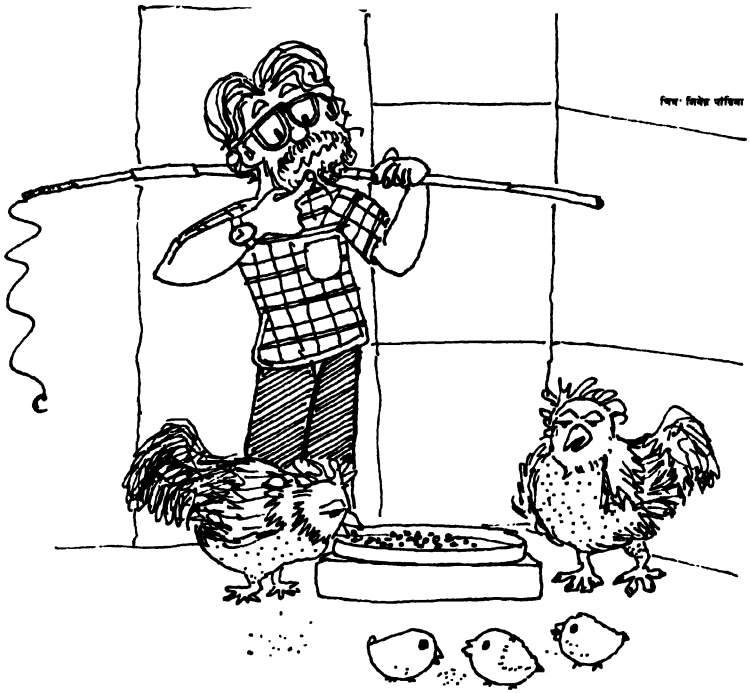

नहीं दिया। बोरिया-बिस्तर बांधकर चल दिए। खूब मछलियां पकड़ी।

बड़ी मछली फंसाई

जब वापस चलने का समय आया, तो उन्हें याद आया कि कीटाणुओं को कई दिनों से खाना नहीं मिला है। खैर, वापस प्रयोगशाला पहुंचे तो यह देखकर जान-में-जान आई कि तश्तरी सूखी नहीं थी। और कीटाणुओं की एक मरियल-सी फसल तैयार थी। जल्दी-जल्दी उन्होंने वे कीटाणु मुर्गियों को दिए, और उनके मरने का इंतज़ार करने लगे। पहले तो मुर्गियों को बाकायदा पहले ही दिन हैजा हो जाता था, और दूसरे दिन वह मर जाती थीं। पर इस बार ऐसा नहीं हुआ। वे बीमार देर से हुई, और जल्दी ही ठीक भी हो गईं।

शाम्बरलां ने कुछ प्रयोग और किए, पर मामला सुलझने की बजाए और पेचीदा होने लगा। बहुत सिर खपाने के बाद वे पास्चर के पास गए।

"हें..., हें... पास्चर साहब, वह ऐसा है कि, क्या बताऊं, उस मुर्गी वाले प्रयोग में कुछ दिक्कत हो रही है।"

"क्या दिक्कत! कैसी दिक्कत? छुट्टी पर जाने से पहले तो तुम कह रहे थे कि सब ठीक चल रहा है?"

"जी, तब सब कुछ वैसा ही हो रहा था

जैसा हमने सोचा था। परन्तु अब ...। "

"अब क्या?"

"जी, पहले मैं मुर्गियों को कीटाणु देता था तो वे दो दिन में हैजे से मर जाती थीं। छुट्टी से लौटने पर मैंने मुर्गियों को कीटाणु दिए तो उन्हें हैजा नहीं हुआ।"

"तो फिर क्या हुआ उन्हें?"

"जी, उनका पेट तो खराब हुआ, मगर वे अब ठीक हैं। अंडे दे रहीं हैं मस्ती से।"

"ऐसा नहीं हो सकता। उन कीटाणुओं से हैजा होकर ही रहता है, और यह एक लाइलाज रोग है। मुर्गी को कीटाणु दिए हैं, तो वह बच नहीं सकती।"

"मैं भी यही समझता था। मगर अब मुझे शक हो रहा है कि हम अभी पूरी तरह इस समस्या को समझे नहीं हैं।"

"पूरी बात बताओ, शाम्बरलां। तुम शायद प्रयोग करने में कोई गलती कर रहे हो जिसके कारण ऐसे नतीजे मिल रहे हैं।"

"प्रयोग की विधि तो वही है जो आपने समझाई थी। हैजे के कीटाणुओं को तश्तरी से निकालकर मुर्गियों को देता हूं। छुट्टी से लौटकर आया तो देखा कि खाना कम पड़ जाने के कारण तश्तरियों में उगती कीटाणुओं की फसल कुछ कमज़ोर लग रही है। खैर, जैसे-तैसे वही कीटाणु मुर्गियों को दिए, पर मुर्गियों का सिर्फ पेट खराब हुआ। मुझे लगा कि कमज़ोर पड़ने के कारण वे कीटाणु नाकामयाब हो गए होंगे। इसलिए मैंने नए सिरे से ताज़ा फसल तैयार की। नए कीटाणु उन्हीं मुर्गियों को दिए, पर इस बार तो उनका पेट भी नहीं खराब हुआ...।"

"तो फिर ऐसा करो कि कुछ और मुर्गियां ले आओ। हो सकता है कि पिछले समूह में ऐसी मुर्गियां रही हों जिनको यह रोग लगता ही नहीं है। आखिर मनुष्यों में भी तो अनेक बीमारियों से मुकाबला करने की क्षमताओं में अंतर होता है।"

"मैंने यह भी कर के देख लिया है। नई मुर्गियों को नए कीटाणु देने पर सभी को हैजा हो जाता है। उनमें से कुछ को पुराने, कमज़ोर कीटाणु दिए, तो उन्हें वही पेट खराब होने वाला रोग हुआ, पर हैजा नहीं। इन्हीं मुर्गियों को नए कीटाणु देने पर कुछ भी नहीं होता है, जबकि यह सिद्ध हो चुका है कि नए कीटाणु जानलेवा हैं।"

इस चर्चा से निकलने वाले नतीजे को हम अपनी कहानी में किसके मुंह से कहलवाएं? नतीजा कुछ इस प्रकार निकला।

कमज़ोर कीटाणुओं से टक्कर लेने के बाद मुर्गियों में ताकतवर कीटाणुओं से मुकाबला करने की क्षमता पैदा हो जाती है।

इस अवलोकन ने पास्चर के काम को एक बिल्कुल ही नई दिशा प्रदान की। पास्चर के अतिरिक्त जमर्नी में पॉल अर्लिख और रूसी वैज्ञानिक इलाई मेचनिकोव और उनके बहुत से सहकर्मियों ने इसी आधारभूत अवलोकन की नींव पर विज्ञान की एक नई विधा का निर्माण किया।

आज भी इस क्षेत्र में सैंकड़ों वैज्ञानिक शोधरत हैं। बहुत से सवालों के जवाब मिल गए हैं, परन्तु अब भी पशुओं (और

लुई पास्चर

सन् 1822 में फ्रांस में चमड़ा कमाने वालों के परिवार में जन्म। अपने 26वें साल में पदार्थों के आणविक ढांचे पर शोधपत्र। सन् 1895 में मृत्यु।

लुई पास्चर सन् 1854 में फ्रांस के एक औद्योगिक केन्द्र, लिल में विज्ञान विभाग के अध्यक्ष बने। वहां रहते हुए उन्होंने विज्ञान को व्यवहार से जोड़ने, खासकर औद्योगिक उत्पादन से जोड़ने, के लिए विशेष कदम उठाए - मजदूरों के लिए सांयकालीन कक्षाएं लगाना, अपने छात्रों को कारखानों में ले जाकर सिखाना आदि। उनकी शोध का एक प्रमुख मकसद व्यावहारिक कठिनाईयों की वैज्ञानिक समझ बनाना और उनके हल खोजना था।

अनाज से शराब बनाने में खमीर उठाना एक महत्वपूर्ण अंग है। पास्चर ने प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया कि खमीर वास्तव में जीवाणु हैं जो तरल पदार्थ में घुली ऑक्सीजन के सहारे भी पनप सकते हैं। दूध, शराब, सिरका, पनीर आदि में इस तरह के जीवाणुओं की संख्या बढ़ाई जा सकती है या उन्हें पनपने से रोका जा सकता है, यह पास्चर की खोज थी। इसीलिए दूध को फटने से बचाने के लिए उसे उबालना ताकि उसमें उपस्थित जीवाणु मर जाएं, पास्चुरीकरण कहलाता है।

इसी से शुरू करके पास्चर ने जीवाणुओं की उत्पत्ति के बारे में खोज शुरू की। क्या सचमुच जीवाणु अपने आप हवा से उत्पन्न हो जाते हैं? कई बारीक प्रयोगों द्वारा उन्होंने सिद्ध किया कि खाना तभी खराब होता है जब वह जीवाणुयुक्त हवा के संपर्क में आता है। अगर उस हवा में कीटाणु नहीं हों तो खाना खराब नहीं होगा। इस समझ के आधार पर उन्होंने फ्रांस के शराब व सिरका उत्पादकों को अपने उत्पादन को खराब होने से बचाने व बेहतर बनाने के ठोस उपाय भी सुझाए।

सन् 1881 से उन्होंने प्रस्तुत लेख में बताए प्रयोग शुरू किए। इन्हीं से पागल कुत्ते के काटने से होने वाले रेबीज़ रोग की रोकथाम संभव बनी। 1885 में पहली बार इस विधि से जोसेफ नाम के एक नौ साल के लड़के की जान बचाई गई जिसे पागल कुत्ते ने काटा था।

मनुष्य) की प्रतिरक्षा प्रणाली एक पहेली है। जिन सिद्धांतों के बारे में हम कुछ-कुछ जान गए हैं, उन पर एक सरसरी निगाह डालते चलें।

प्रतिरक्षा तंत्र और हंस

साहित्यिक पक्षी हंस बड़ा विवेकशील होता है। नीर-क्षीर विवेक रखता है, और दूध-का-दूध, पानी-का-पानी कर के दूध वालों का धंधा चौपट करने की क्षमता रखता है। अन्य पशुओं को इतना विवेकशील न तो साहित्य मानता है, और न ही जनमानस। परन्तु रीढ़ की हड्डी वाले सभी जानवर चिड़िया, मछली, मेंढक वगैरह अपने शरीर में एक ऐसा कोशिका-तंत्र समाविष्ट रखते हैं जिसमें एक और भी अद्भुत विवेक-शीलता है। यह है 'स्वयं' और 'अन्य' की पहचान। 'स्वयं' अर्थात वे सभी लाखों-करोड़ों रासायनिक तत्व जो एक शरीर अपनी रोज़मर्रा की गतिविधियों के लिए बनाता है, और 'अन्य' वे, जो इन लाखों-करोड़ों में से न हों। यही नहीं, कई 'अन्य' किस्म के रसायन शरीर में प्रवेश करते हैं। इस कोशिका तंत्र में यह भी विवेक है कि इनमें से कौन खतरनाक हो सकता है, और कौन हानिरहित। अर्थात 'स्वयं-अन्य विवेक' के अतिरिक्त इसमें 'अन्य-प्रकार' का विवेक भी है, जिसे 'अन्य-अन्य विवेक' कह सकते हैं। अब तो शब्दावली पेचीदा होती जा रही है। परन्तु यह कोशिका तंत्र, जिसे Immune System अथवा प्रतिरक्षा तंत्र कहा जाता है, और भी गूढ़ है। चर्चा को सीमित रखने के उद्देश्य से आगे की बात स्तनधारियों के प्रतिरक्षा तंत्र तक ही सीमित है।

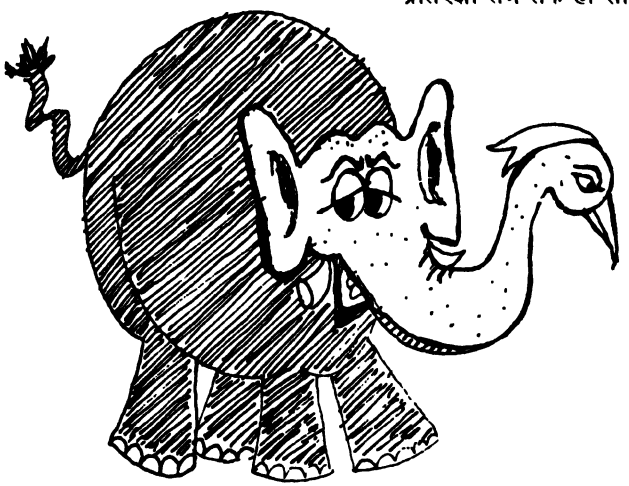

हंस का विवेक और हाथी की याद्दाश्त

साहित्य और जनमानस हाथी की स्मरण-शक्ति को काफी तूल देते हैं, इसलिए चलिए यह मान लें कि हमारे अन्दर जो हंस-रूपी प्रतिरक्षा तंत्र है, उसमें यह हाथियों वाला गुण भी है। इस गुण का वैज्ञानिक विश्लेषण अभी बहुत ही विवादास्पद है, परन्तु इसकी उपस्थिति निश्चित है। यह इस बात से सिद्ध होता है कि अमुक प्रकार के 'अन्य' से एक बार मुलाकात होने पर प्रतिरक्षा तंत्र उसे याद रखता है। यह स्मृति लम्बी अवधि की भी होती है (जिसके कारण बचपन में खसरे का टीका लगाने से अथवा खसरा हो जाने के बाद जीवन भर यह बीमारी नहीं होती) और छोटी अवधि की भी (जैसा कि पीलिया के टीके हर तीन वर्ष पर लगाने की आवश्यकता से सिद्ध होता है)।

... और चींटी-सा ....

साहित्यिक उपमाएं बड़ी खतरनाक होती हैं। ऐसे पीछे पड़ी हैं कि प्रतिरक्षा तंत्र को कार्टून बनाकर ही छोड़ेंगी। हंस के विवेक और हाथी की याद्दाश्त के साथ कार्य-विभाजन के लिए मैं चींटियों के बिल अथवा मधुमक्खियों के छत्ते की उपमा देना चाह रहा हूं। प्रतिरक्षा तंत्र की कुछ कोशिकाओं का काम है घुसपैठिए को समूचा ही निगल जाना। इसके बाद वे उसके टुकड़े-टुकड़े कर के श्वेत रक्त कोशिकाओं को दिखाती हैं कि "लो! इस प्रकार का कोई टुकड़ा दिखे, तो उसे मारना है।" एक प्रकार की श्वेत रक्त कोशिकाओं को टुकड़े दिखाने की आवश्यकता नहीं होती। यह समूचे घुसपैठिए की सतह पर एक टुकड़ा पहचान कर हरकत में आ जाती हैं। इसी प्रकार अलग-अलग कोशिकाओं के अलग-अलग दायित्व हैं, जिनकी बारीकियों पर अभी विचार नहीं करेंगे।

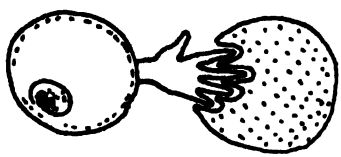

कार्य विभाजन के अंतर्गत हम प्रतिरक्षक कोशिकाओं को दो मोटे-मोटे वर्गों में बांट सकते हैं। एक तो वे, जो कि केवल 'स्वयं' और 'अन्य' का अन्तर पहचानने के काबिल हैं, और दूसरी वे जो कि 'अन्य-एक' और 'अन्य-दो' के बीच फर्क पहचान सकें। इस श्रेणी की कोशिकाओं को हम पहले से ही श्वेत रक्त कोशिकाओं के एक वर्ग विशेष, के नाम से जानते हैं। कैसे करती हैं यह कोशिकाएं 'अन्य एक' और 'अन्य दो' में फर्क? खेद और क्षमा-याचना के साथ मुझे फिर एक उपमा का सहारा लेना पड़ेगा।

मान लीजिए कि हर कोशिका की सतह पर एक 'हाथ' उग रहा है। इसकी उंगलियां किसी एक आकार में जड़वत हैं। हर कोशिका का 'हाथ' भिन्न आकार का है, और ऐसे 10^8 भिन्न प्रकार के 'हाथ' वाली कोशिकाएं बनाने की क्षमता

शरीर में है। इस 'हाथ' को receptor या ग्राही कहा जाता है। इसी ग्राही के माध्यम से कोशिका घुसपैठिए की सतह टटोलती है, या घुसपैठिए द्वारा स्रावित पदार्थों को पकड़ने की कोशिश करती है। अगर इच्छित आकार पकड़ में आ जाए, तो समझिए कि कोशिका के ग्राही ने अपना 'ग्राह्य' पहचान लिया।

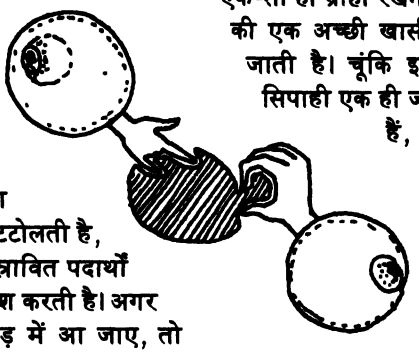

पहचान हो जाने के साथ ही उस कोशिका को यह संकेत भी प्राप्त हो जाता है कि "अमुक आकार के घुसपैठिए संक्रमण की कोशिश कर रहे हैं। इनके खिलाफ कार्रवाई करो।" यह कार्रवाई दो मुख्य प्रकार के रूप लेती है। कुछ कोशिकाएं उस प्रकार को पहचान कर चुपचाप बैठ जाती हैं। उनका काम यह है कि वे उस आकार को याद रखें। भविष्य में अगर फिर वही आकृति सामने पड़ जाए, तब इनकी तन्द्रा भंग होती है। मानों मोहल्ले के दादा, अजनबी को यह बताकर छोड़ दें कि "इस बार तो माफ किया, फिर कभी यहां नज़र आए तो तुम्हारी खैर नहीं।" इस प्रक्रिया से प्रतिरक्षा प्रणाली की स्मरण शक्ति उत्पन्न होती है।

कार्रवाई का दूसरा रूप और भी नाटकीय होता है। एक ग्राह्य-विशेष को पहचानने पर एक कोशिका पहले तो बड़ी तेज़ी से समसूत्री विभाजन करना शुरू करती है। इस माध्यम से बिल्कुल एक-सा ही ग्राही रखने वाली कोशिकाओं की एक अच्छी खासी फौज तैयार हो जाती है। चूंकि इस फौज के सभी सिपाही एक ही जननी से उत्पन्न हुए हैं, इसलिए सब एक से होते हैं। अब यह एक टुकड़ी के रूप में घुसपैठिया आकृति पर धावा बोल देते हैं। एक बात और भी है - किसी भी संक्रामक घुसपैठिए की सतह पर, अथवा उसके द्वारा स्रावित, असंख्य आकृतियां ऐसी होती हैं जो कि प्रतिरक्षक कोशिकाओं के ग्राह्य बनने के काबिल होती हैं। यदि उनमें से कुछ एक पहचान में आ जाएं, तो कई हमलावार टुकडियां अलग-अलग मोर्चों पर धावा बोल देंगी।

मगर टाका कहा गया?

यह तो सब ठीक है, मगर दीदी की कहानी कहां से शुरू हुई थी, और कहां गायब हो गई! टीका लगाने से बीमारी से रक्षा कैसे होती है? *आए थे हरि भजन को, ओंटन लगे कपास।* अगले अंक तक कपास ओंट कर आप भी अपना मत बना लीजिए। यदि आपकी प्रतिक्रिया मुझ तक पहुंची, तो उसके आधार पर दूसरा लेख लिखने का साहस करूंगा, जिसमें इन प्रश्नों पर चर्चा हो।

(अमित मिश्रा – इंस्टीट्यूट ऑफ इम्युनोलॉजी, दिल्ली में कार्यरत। इस लेख के चित्र समन हबीब और शिवेन्द्र पांडिया ने बनाए हैं।)